अङ्क-२८
जुलाई-दिसम्बर २०१६

वेदविद्या
ISSN-2230-8962

एकादशोपनिषद् का सैद्धान्तिक परिचय एवं ऋषि दयानन्द की दृष्टि

डॉ. रामचन्द्र

वैदिक वाङ्मय में उपनिषदों का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उपनिषद् साहित्य के बिना वैदिक वाङ्मय की कल्पना भी कठिन है। उपनिषदों की गणना आर्ष साहित्य में की जाती है। ऋषि दयानन्द ने आर्ष ग्रन्थों की महत्ता का वर्णन करते हुए सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है- "महर्षि लोगों का आशय, जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण करने में समय थोड़ा लगे, इस प्रकार का होता है। और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने, वहाँ तक कठिन रचना करनी, जिसको बड़े परिश्रम से पढ़ के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना, कौड़ी का लाभ होना। और आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।"[१a] इन पङ्क्तियों से आर्ष ग्रन्थों के सन्दर्भ में ऋषि दयानन्द के विचारों का ज्ञान होता है । वे अपनी आर्षपाठविधि के पठनीय ग्रन्थों के क्रम में सर्वत्र दश उपनिषदों का उल्लेख करते हैं। वे सत्यार्थ-प्रकाश में उपनिषदों का पठन-पाठन विधि में उल्लेख करते हुए लिखते हैं- परन्तु वेदान्त सूत्रों के पढ़ने के पूर्व ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक इन दश उपनिषदों को पढ़के, छः शास्त्रों के भाष्य वृत्तिसहित सूत्रों को दो वर्ष के भीतर पढ़ावें और पढ़ लेवें।[१b] संस्कारविधि[२] एवं ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका[३] में भी उनका ऐसा ही लेख प्राप्त होता है। इससे यह स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द की दृष्टि में उपनिषदों का अध्ययन मानव जीवन के उत्थान के लिए अपरिहार्य है।

उपनिषद् परम्परा : एक विहङ्गम अवलोकन :

उपनिषद् वाङ्मय से विश्व भर के विद्वान् प्रेरणा प्राप्त करते रहे हैं। उपनिषद् मूलतः ब्रह्मविद्या के प्रतिपादक ग्रन्थ हैं। सत्, असत्, प्रकृति, जीव, ब्रह्म आदि तत्त्वों का अनिर्वचनीय विश्लेषण उपनिषदों में प्राप्त होता है। उपनिषदों में यथार्थ बोध की दृष्टि प्राप्त होती है। उपनिषद् की एक महत्त्वपूर्ण दृष्टि है कि "कुछ ब्रह्माण्ड में है, वही पिण्ड में है।" इसे ही स्थान-स्थान पर **अथाधिदैवत** और **अथाध्यात्म** कहा गया है।[४a]

---

[१] स्वामी दयानन्द सरस्वती, **सत्यार्थ प्रकाश**, श्री घूडमलप्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थन्यास, हिण्डौन सिटी, २००८ (a) तृतीय समुल्लास (b) तृतीय समुल्लास (c) नवम समुल्लास (d) सप्तम समुल्लास

[२] महर्षि दयानन्द सरस्वती, **संस्कारविधि**, श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डौन सिटी, २००६, पृ. ९७

[३] स्वामी दयानन्द सरस्वती, **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, २००३, पृ. २१४

[४] डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार, **एकादशोपनिषद्**, विजय कृष्ण लखनपाल, ग्रेटरकैलाश, नई दिल्ली (a) पृ. १० (b) पृ, १४ (c) पृ. २१८

उपनिषदों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं कालनिर्धारण का इदमित्थम् निश्चय करना अत्यन्त कठिन है । इनकी रचना एक काल में नहीं हुई है। विस्तृत कालावधि में इनका प्रणयन हुआ है । विचारकों का अभिमत है कि इनका रचना काल १६०० ई. पू. से ५०० B.C. तक है। यह कहा जा सकता है कि आधारभूत ग्यारह उपनिषदों का रचनाकाल पर्याप्त प्राचीन है। इनके रचनाकाल की आरम्भिक सीमा ब्राह्मणकाल है एवं उत्तर सीमा मुगलकाल तक है।[५a]

उपनिषदों की इयत्ता का आकलन भी जटिल है। 'कल्याण' के गीताप्रेस उपनिषद् अंक (जनवरी, १९४९) में २२० उपनिषदों की सूची प्राप्त होती है।[५b] मुक्तिकोपनिषद् में उपनिषदों की संख्या १०८ दी गई है।[५c] वहीं पर ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक की प्रधान दश उपनिषदों में गणना की गई है। इनके अतिरिक्त श्वेताश्वतर भी प्रमुख उपनिषदों में अन्यतम है।

उपनिषदों की विषयवस्तु इतनी उत्कृष्ट है कि यह नित्य नूतन है। इनकी विचारधारा सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक है। दाराशिकोह ने १६५६ में उपनिषदों का फ़ारसी में अनुवाद किया। Anquetil Du. Peron ने १८०१ में लैटिन में इनका अनुवाद किया। इनके पश्चात् राजा राममोहन राय ने १८१६-१८१९ में, E.Roer ने १८४८-१८७४ में, एवं Max Muller ने १८७९-१८८४ में उपनिषदों का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इनके अतिरिक्त भी दुनिया भर में उपनिषदों के अनेक भाषाओं में अनुवाद हुए है। जर्मन विद्वान् शोपनहार ने तो लिखा है कि अगर जीवन में मुझे किसी वस्तु से आत्मिक शान्ति मिली है तो उपनिषदों से और अगर मृत्यु के समय मुझे किसी वस्तु से शान्ति मिल सकती है तो उपनिषदों से।[५b]

अब यहाँ उपनिषद् परम्परा की आधारभूत एवं प्रामाणिक ग्यारह उपनिषदों का सैद्धान्तिक परिचय प्रस्तुत हैं -

ईशोपनिषद् :

यह उपनिषद् यजुर्वेद की काण्वशाखा का चालीसवाँ अध्याय है।[६a] इस उपनिषद् का प्रथम मन्त्र 'ईशावास्यमिदं सर्वम्.' है, यहाँ प्रयुक्त 'ईशा' के कारण ही इस उपनिषद् का नाम ईशोपनिषद् पड गया। इस उपनिषद् में कुल १८ मन्त्र हैं। मूल यजुर्वेद संहिता के ४०वें अध्याय एवं ईशोपनिषद् में अधिक भेद नहीं है। यजुर्वेद में कुल १७ मन्त्र हैं, जबकि उपनिषद् में १८ मन्त्र हैं। यद्यपि आकार की दृष्टि से यह

---

[५] डॉ. वीणा मल्होत्रा, **उपनिषदों में निर्वचन एक अध्ययन**, संजय प्रकाशन, सोम बाजार, दिल्ली, २०१०, (a) पृ० १६ (b) पृ. १८ (c) पृ. १७

[६] स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, **उपनिषद् प्रकाश**, वानप्रस्थ साधक आश्रम, साबरकांठा, २००७ (a) पृ. ९ (b) पृ. ६९

उपनिषद् छोटी है, पर महत्त्व की दृष्टि से सभी उपनिषदों से अधिक महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। महात्मा गाँधी ने इस उपनिषद् के सन्दर्भ में कहा था -

"If only the first verse in the lshopanishad were left in the memory of the Hindus, Hinduism would live forever." [७]

यह उपनिषद् सभी उपनिषदों का मूल एवं सर्वप्राचीन भी है। इस उपनिषद् के सभी मन्त्र ज्ञानकाण्ड से सम्बद्ध हैं। यजुर्वेद के 39वें अध्याय में अन्त्येष्टि कर्म का वर्णन प्राप्त होता है।[८a] तदनन्तर जीवन के आध्यात्मिक मूल्यों का प्रतिपादन इस उपनिषद् में किया गया है।

सर्वप्रथम व्यक्ति को ईश्वर की सर्वव्यापकता का सन्देश दिया है। इस संसार में उत्पन्न या नाश होने वाला प्रत्येक कण ईश्वर से आच्छादित है। यह सन्देश व्यक्ति के जीवन में अपूर्व परिवर्तन करने वाला है। मन्त्र कहता है -

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। [९a]

वस्तुतः व्यक्ति यदि ईश्वर की सर्वव्यापकता को अन्तर्मन से स्वीकार कर लेता है तो जीवन से पापकर्म की सम्भावना सर्वथा निर्मूल हो जाती है। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए मन्त्र के उत्तरार्ध में कहा गया है कि उस त्याग किये हुए का उपभोग कर, परन्तु किसी के धन का लालच मत कर -

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।

पं. गुरुदत्त इस मन्त्र की व्याख्या में लिखते हैं -

Enjoy pure delight, O man, by abandoning all thoughts of this perishable world, and convet not the wealth of any creature existing.[१०a]

अगले मन्त्र में ब्रह्मज्ञान के प्रति समर्पित व्यक्ति को भी निरन्तर सौ वर्ष पर्यन्त कर्म करने का उपदेश दिया है। वेदोक्त निष्काम कर्म करने से व्यक्ति पाप कर्म में प्रवृत्त नहीं होता और विद्या, अवस्था एवं सुशीलता की निरन्तर वृद्धि होती है।[९b]

तृतीय मन्त्र में आत्मा के विरुद्ध आचरण न करने का उपदेश है। ऐसे आत्मघाती लोगों का इहलोक तथा परलोक बिगड़ जाता है। ऋषि दयानन्द इस मन्त्र की व्याख्या में लिखते हैं -

---

[७] Religion of Mahatma Gandhi, www.mkgandhi.org/religionmk.htm

[८] महर्षि दयानन्द सरस्वती, यजुर्वेदभाषाभाष्य, आध्यात्मिक शोध संस्थान, ईस्ट ऑफ कैलाश, नई दिल्ली, २०१० (a) ३९/१, (b) ४०/३, (c) ४०/५ (d) ४०/९-१४

[९] ईशोपनिषद् (a) १ (b) २ (c) ६ (d) ७ (e) ८ (f) ११, १४ (g) १५

[१०] Prof. Ram Prakash Sansthan, Gagiabad, १९९८ (a) पृ. ६९ (b) पृ. ११९

"वे ही मनुष्य असुर, दैत्य, राक्षस तथा पिशाच आदि है, जो आत्मा में और जानते, वाणी से और बोलते और करते कुछ और ही है।" [८b]

चतुर्थ एवं पञ्चम मन्त्र में ईश्वर के स्वरूप का वर्णन है। ईश्वर मन से भी अधिक गतिशील है। वह सर्वव्यापक है इसलिए मन जहाँ पहुँचता है वहाँ वह पहले ही विद्यमान होता है। ईश्वर अधर्मात्मा लोगों से करोड़ों वर्षों में भी प्राप्य नहीं है और धार्मिक विद्वान् जनों के लिए सर्वदा अनुभवजन्य है।[८c]

आगे प्राणिमात्र में आत्मतत्त्व की अनुभूति का सन्देश देते हुए कहा है कि जब व्यक्ति प्राणिमात्र की अनुभूति स्व अन्तरात्मा में करता है और स्वयं को सब जीवों में देखता है तो वह पाप नहीं कर सकता।[९c]

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः[९d] मन्त्र में आध्यात्मिक जीवन की विलक्षण स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है कि जब जीव सब जीवों में अपनी अभेद अनुभूति करता है तो वह मोह एवं शोक से रहित हो जाता है।

ईश्वर की स्वरूपस्थिति का वर्णन करते हुए कहा है कि ईश्वर सर्वव्यापक, अकाय, अव्रण, नाड़ी बन्धन से रहित, शुद्ध, पापशून्य, कवि, मनीषी एवं सर्वशक्तिमान् है।[९e] ईश्वर के इस विराट् स्वरूप की अनुभूति करने वाला ब्रह्मज्ञानी आध्यात्मिक जीवन के शिखर तक पहुंच जाता है। ऐसे ही परमज्ञानी के लिए महामुनि व्यास कहते हैं -

प्रज्ञाप्रसादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान्प्राज्ञोऽनुपश्यति॥[११]

इसी क्रम में विद्या अविद्या एवं सम्भूति असम्भूति का वर्णन किया है। ऋषि दयानन्द के अनुसार विद्या, अविद्या, सम्भूति, असम्भूति क्रमशः शब्दार्थसम्बन्ध ज्ञान, नित्य में अनित्य अनुभूति, स्वरूप प्राप्त प्रकृति एवं मूल प्रकृति आदि के वाचक हैं।[८d] उपनिषद् के अनुसार अविद्या एवं विनाश से मृत्यु को पार करके विद्या एवं सम्भूति से अमृतत्व की प्राप्ति होती है।[९f]

सत्यधर्म की प्राप्ति के कठिन मार्ग का वर्णन करते हुए कहा है सत्य का मुख सोने के पात्र से ढका हुआ है- **हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।**[९g]

उपनिषद् का अन्तिम मन्त्र ईश्वर के प्रति सम्पूर्ण समर्पण की प्रेरणा देता है - अग्ने नय सुपथा।

केनोपनिषद् :

इस उपनिषद् का प्रथम वाक्य 'केनेषितं पतति' है। यहाँ प्रयुक्त आद्य शब्द 'केन' के आधार पर इस उपनिषद् का नाम केनोपनिषद् है। इसका सम्बन्ध सामवेद की तलवकार शाखा से है, अतः इसे

[११] पतञ्जलि, **योगदर्शन**, दर्शन योग महाविद्यालय, साबरकांठा, गुजरात, २००६, १/४७

तलवकारोपनिषद् भी कहा जाता है। यह चार खण्डों में विभाजित है। इसमें ब्रह्म का वर्णन किया गया है। ब्रह्म का साक्षात्कार जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि एवं उसकी अप्राप्ति सबसे बड़ा विनाश है।[१२a] स्वामी दर्शनानन्द के अनुसार यह उपनिषद् मिथ्याज्ञान को हटाने में अत्यन्त उपयोगी है।[६b]

प्रथम खण्ड में सर्वप्रथम प्रश्न किया है कि किसकी प्रेरणा से मन, प्राण, वाणी, चक्षु एवं श्रोत्र अपना-अपना कार्य करते हैं ?[१२b] यद्यपि यह स्पष्ट है कि जीवात्मा इनसे कार्य कराता है तथापि इन इन्द्रियों के स्व स्व कार्य करने का निर्धारण कौन करता है ? उपनिषद् का ऋषि उत्तर देता है - श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्।[१२c] ब्रह्म ही है वह जिससे शक्ति प्राप्त करके श्रोत्र, मन, वाणी, प्राण और चक्षु अपना कार्य करते हैं, उसे जानकर ही मनुष्य मोक्ष की प्राप्ति करता है।

ब्रह्म की अनुभूति चक्षु, मन, वाक् से सम्भव नहीं है। क्योंकि ब्रह्म इन्द्रियातीत है। वह ज्ञात एवं अज्ञात से परे है।[१२d]

आगे उपनिषत्कार 'तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते'[१२e] इस कथन को कई बार कहकर स्पष्ट करते हैं कि जो वाणी से प्रकट नहीं किया जा सकता, अपितु जिससे वाणी बोलती है, जो मन से नहीं जाना जा सकता अपितु जिससे मन जानता है; जो चक्षु, श्रोत्र, प्राण से नहीं जाना जा सकता अपितु जिससे ये कार्य करते हैं वही ब्रह्म है।

द्वितीय खण्ड में ब्रह्मविद्या की अत्यन्त सूक्ष्मता एवं गहनता का प्रतिपादन किया है। ऋषि दयानन्द ने भी लिखा है- 'विशेष ब्रह्मविद्या के सुनने में अत्यन्त ध्यान देना चाहिए कि यह सब विद्याओं में से सूक्ष्म विद्या है।[१c] इस उपनिषद् में प्रश्नोत्तर के द्वारा संवाद किया गया है। ब्रह्म के स्वरूप के सन्दर्भ में कहा है कि ब्रह्म को जितना भी तुम जानो उसे दभ्र (थोड़ा) ही जानते हो।[१२f] ऋषि कहता है - नहीं तो मैं यह कहता हूँ कि मैं ब्रह्म को जानता हूँ, न नहीं जानता हूँ, क्योंकि थोड़ा जानता भी हूँ। जो ब्रह्म को जानता है वह 'उतना' मात्र = थोड़ा ही जानता है - अर्थात् जानता भी है और नहीं भी जानता -

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ।[१२g]

आगे उपनिषत्कार कहते हैं कि ब्रह्म साक्षात्कार जीवन का ध्येय है। यदि इस जीवन में यह प्राप्त कर लिया तो ठीक है, अन्यथा महती विनष्टि है। धीर मानव चिन्तन करके अगले जन्म में मुक्त हो जाते हैं -

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति, न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।[१२h]

---

[१२] **केनोपनिषद्** (a) २/५ (b) १/१ (c) १/२ (d) १/३ (e) १/४ (f) २/१ (g) २/२ (h) २/५ (i) ४/६ (j) ४/८

तृतीय खण्ड में आलंकारिक कथा के माध्यम से ब्रह्म का ज्ञान कराया है। कथा इस प्रकार है - अग्नि, वायु, इन्द्र आदि देवता अपनी विजय से अति आनन्दित थे। वे भूल गये कि वास्तव में यह विजय ब्रह्म की ही है। ब्रह्म ने यह जान लिया और स्वयं को उनसे अलग कर लिया और स्वयं को यक्ष के रूप में प्रकट कर लिया। अग्नि उसे जानने के लिए पहुँचा तो यक्ष ने उसके समक्ष एक तिनका रख दिया, जिसे वह जला नहीं सका। वायु उस तिनके को उड़ा न सका। इन्द्र जब पहुँचा तो यक्ष छिप गया। निरन्तर खोजने पर उसे 'उमा' नामक सुविभूषित महिला मिली। वस्तुतः यहाँ अग्नि एवं वायु इन्द्रियों के प्रतिनिधि हैं। इन्द्र जीवात्मा का वाचक है तथा 'उमा' बुद्धि की प्रतिनिधि है। यक्ष = ब्रह्म का साक्षात्कार इन्द्रियों से नहीं हो सकता। जीवात्मा सद्बुद्धि से ही ब्रह्मदर्शन कर सकता है। यह तथ्य यहाँ आलंकारिक रूप से प्रकट किया गया है।

अन्तिम चतुर्थ खण्ड में उमा (बुद्धि) बताती है कि ब्रह्म विद्युत् की भाँति छिपता और प्रकट होता है। ज्ञानी के लिए वह दृश्य है और अज्ञानी से छिपा रहता है । वह ब्रह्म 'वनम्' - निरन्तर उपास्य है। जो निरन्तर उपासना करता है वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।[१२i] ब्रह्म प्राप्ति के लिए तप, दम एवं कर्म आधार है । वेद, वेदाङ्गों का ज्ञान एवं सत्य संकल्प प्रमुख साधन है।[१२j] इस प्रकार यह उपनिषद् ब्रह्म के स्वरूप एवं उसकी प्राप्ति के साधनों का वर्णन करती है।

कठोपनिषद् :

यह उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद की काठकशाखा से सम्बद्ध है। इसमें छः वल्लियाँ (अध्याय) हैं। इसमें नचिकेता और यम के संवाद के माध्यम से मोक्ष मार्ग को स्पष्ट किया गया है। इसमें श्रेयमार्ग, प्रेयमार्ग, आत्मतत्त्व, परमात्मा की प्राप्ति के साधन, योग आदि विषयों का अत्यन्त सुन्दर रीति से वर्णन किया गया है।

प्रथमवल्ली का आरम्भ सुन्दर रीति से हुआ है। वाजश्रवस को मुक्ति की अभिलाषा हुई। इसकी पूर्ति के लिए उन्होंने अपना सम्पूर्ण धन-धान्य दान कर दिया। उसके नचिकेता नामक पुत्र था। जब उसने देखा कि उसके पिता शरीर से अत्यन्त कमजोर गायों को दान कर रहे हैं तो उसने श्रद्धा से प्रेरित होकर पूछा मुझे किसे दोगे ? पिता ने उत्तर दिया - **मृत्यवे त्वा ददामीति।**[१३a]

यहाँ पर प्रयुक्त 'मृत्यु' आचार्य का वाचक है। नचिकेता जब यम के घर पहुँचा तो यमाचार्य घर पर नहीं थे। वे तीन दिन बाद लौटे। तब तक नचिकेता बिना खाये पिये ही वहाँ पर रहा। यम को जैसे ही यह ज्ञात हुआ तो वे दुःखी हो गये। उन्होंने नचिकेता से कहा - नमस्य ब्राह्मण! मेरा कल्याण हो। इसके बदले में आप कोई तीन वर मुझसे वरण कर लो।[१३b]

---

[१३] **कठोपनिषद्** (a) १/४ (b) १/९ (c) १/१२ (d) १/१६ (e) १/२० (f) १/२७ (g) २/५ (h) २/१० (i) २/१५-१८ (j) २/२२-२५ (k) ३/१०-१३ (l) ५/१५ (m) ६/१०

नचिकेता ने सर्वप्रथम वर के रूप अपने पिता की सम्पूर्ण प्रसन्नता की इच्छा व्यक्त की। यम ने तुरन्त उसकी इच्छा पूर्ण कर दी। द्वितीय वर में नचिकेता स्वर्ग्य अग्नि को जानना चाहता है। स्वर्ग के विषय में वह कहता है कि वहाँ पर भय नहीं है। वहाँ जरा नहीं है। वहाँ व्यक्ति भूख व प्यास से रहित होकर पूर्णानन्द में रहता है -

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति, न तत्र त्वं न जरया बिभेति।[१३c]

नचिकेता को यम ने स्वर्ग्याग्नि की सम्पूर्ण विधि बता दी। नचिकेता ने वह सम्पूर्ण विधि यथावत् यम को सुना दी। यम ने प्रसन्न होकर उसे कहा कि अब यह अग्नि नाचिकेताग्नि कहलायेगी।[१३d]

तृतीय वर के रूप में नचिकेता ने अत्यन्त गम्भीर प्रश्न पूछा - मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा का अस्तित्व रहता है या समाप्त हो जाता है ?[१३e]

इस एक प्रश्न से नचिकेता ने अनेक प्रश्नों का समाधान जानना चाहा है। वस्तुतः शरीर, इन्द्रिय, मन, आत्मा, परमात्मा, कर्म एवं तज्जन्य संस्कारों के सम्यक् ज्ञान के बिना इस प्रश्न का उत्तर जाना ही नहीं जा सकता। नचिकेता के इस प्रश्न पर यम ने कहा - यह अत्यन्त सूक्ष्म प्रश्न है। तुम अन्य प्रश्न पूछ लो। उसे अनेक प्रलोभन दिये। पुत्र, पौत्र, भूमि, अवस्था, हिरण्य आदि का लालच दिया। परन्तु नचिकेता विचलित नहीं हुआ। उसने दृढता पूर्वक कहा कि वित्त से व्यक्ति कभी भी तृप्त नहीं होता।[१३f]

तब यमाचार्य नचिकेता को प्रश्न का उत्तर देते हैं -

संसार में श्रेय एवं प्रेय मार्ग हैं। श्रेय मार्ग के पथिक का कल्याण होता है। प्रेम मार्ग के पथिक का लक्ष्य छूट जाता है। अविद्या का मार्ग मोहक होता है उस पर व्यक्ति उसी प्रकार चलता है जैसे कोई अन्धा चला रहा हो।[१३g] यह ब्रह्मविद्या का उपदेश श्रवण के लिए भी प्राप्त नहीं होता। यह इतना सूक्ष्म है कि इसे सुनकर भी जानना कठिन है। वस्तुतः अनित्य द्रव्यों को निष्काम परोपकार में लगाने से ही शनैः शनैः ब्रह्म की प्राप्ति होती है -

अनित्यैः द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम्।[१३h]

सभी वेदों का प्रतिपाद्य ओम् है। तप और ब्रह्मचर्य पालन का लक्ष्य भी ओम् है। यही अक्षर ब्रह्म है। इसे जानकर ही व्यक्ति को सम्पूर्ण प्राप्तव्य प्राप्त होता है। ओम् की उपासना सर्वोत्तम साधना है। इसे जानकर ही ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है।[१३i]

उपनिषत्कार कहते हैं कि ब्रह्म का साक्षात्कार प्रवचन, मेधा या ज्ञान से नहीं होता। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के मार्ग के अनुसरण से ही ब्रह्मदर्शन होता है। दुश्चरित, अशान्त, असंयमी व्यक्ति को ब्रह्म का दर्शन नहीं होता।[१३j] इन्द्रियाँ, अर्थ, मन, बुद्धि, महत्तत्व, प्रकृति और पुरुष ये उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं। ब्रह्म का साक्षात्कार अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि से ही सम्भव है।[१३k]

जैसे अग्नि एवं वायु सर्वत्र व्याप्त है वैसे सर्वभूतान्तरात्मा सर्वत्र व्याप्त है। वहाँ सूर्य, चन्द्र, तारक नहीं चमकते अपितु उसी ब्रह्म से ये सब चमकते हैं।[१३l] जब व्यक्ति की इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि स्थिर होते हैं तभी ब्रह्म की प्राप्ति की दिशा स्पष्ट होती है।[१३m]

इस प्रकार यह उपनिषद् ब्रह्म साक्षात्कार की रीति का उत्तमता से वर्णन करती है।

प्रश्नोपनिषद्

यह उपनिषद् अथर्ववेद से सम्बद्ध है। इसमें ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मपर सुकेशा आदि छः जिज्ञासुओं के छः प्रश्न हैं। ये सभी जिज्ञासु बनकर भगवान् पिप्पलाद से इन प्रश्नों का समाधान प्राप्त करने के लिए पहुँचते है। इतनी अर्हता से सम्पन्न होने पर भी पिप्पलाद उन्हें एक वर्ष पर्यन्त तप, ब्रह्मचर्य एवं श्रद्धापूर्वक रहने का निर्देश देते हैं।[१४a] तदनन्तर पिप्पलाद उनकी सभी जिज्ञासाओं का समाधान करते हैं।

सर्वप्रथम कबन्धी कात्यायन ने प्रश्न पूछा-मनुष्य, पशु, जीव जन्तु आदि प्रजा की उत्पत्ति कहां से हुई? पिप्पलाद कहते हैं प्रजापति ने तपपूर्वक रयि और प्राण रूपी जोड़ी उत्पन्न की।[१४b] इनमें आदित्य प्राण है और चन्द्रमा रयि है। आदित्य अपनी किरणों से सभी दिशाओं में प्राण का संचार करता है।[१४c]

जिस प्रकार संवत्सर दक्षिण और उत्तर नाम से दो अयन है। उसी प्रकार जो व्यक्ति फल की इच्छा से कार्य करता है वह चान्द्रलोक में जाता है और पुनर्जन्म भी लेता है। इसके विपरीत जो निष्काम भाव से तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा, विद्यापूर्वक आत्मानुसंधान करता है वह मुक्ति की प्राप्ति कर लेता है।[१४d]

द्वितीय प्रश्न भार्गव वैदर्भि ने किया - कौन देव प्रजा को धारण करते हैं, कितने प्रकाशित करते हैं और कौन इनमें सबसे बड़ा है ? प्राण ही आकाश, वायु, वाणी, मन, चक्षु आदि सबका धारक है। प्राण ही से ये सब गतिशील हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, यज्ञ, क्षत्र, ब्रह्म आदि सभी प्राण में उसी तरह प्रतिष्ठित हैं जैसे रथचक्र की नाभि में आरे।[१४e]

तीसरे प्रश्न में कौशल्य ने पूछा कि प्राण इस शरीर में कहाँ से आता है, इसके विभाग कौन करता है, और कैसे शरीर छोड कर चला जाता है ?[१४f]

इस प्राण की सत्ता का कारण परमात्मा ही है- आत्मन एष प्राणो जायते।[१४g] जैसे सम्राट राजाओं को अलग-अलग राज्य देता है वैसे ही यह प्राण अन्य प्राणों को गति देता है। पायु में अपान; नेत्र, नासिका में स्वयं प्राण तथा मध्यभाग में समान कार्य करता है। हृदय में आत्मा का वास है।[१४h] पुण्य से योगी का जीवन, पाप से पशु जीवन एवं दोनों से मनुष्यजन्म की प्राप्ति होती है।[१४i]

---

[१४] **प्रश्नोपनिषद्** (a) १/२ (b) १/४ (c) १/५ (d) १/९-१० (e) २/४-६ (f) ३/१ (g) १/३ (h) ३/४-६ (i) ३/७ (j) ४/२ (k) ४/७-९ (l) ५/२ (m) ५/३-५ (n) ६/४ (o) ६/५-६

चतुर्थ प्रश्न है कि पुरुष में कौन सोता है, कौन जागता है, कौन स्वप्न देखता है, किसे सुखानुभूति होती है और किसमें ये सब प्रतिष्ठित होते हैं ? पिप्पलाद कहते हैं कि जैसे अस्त वेला में सारी किरणें तेजोमण्डल में एकत्रित हो जाती हैं, वैसे ही शयनवेला में सभी शक्तियाँ मन में संगृहीत हो जाती हैं।[१४j] जैसे पक्षी सायंकाल अपने वास स्थान पर पहुँच जाते हैं, वैसे ही रात्रि वेला में मन इन्द्रियाँ परमात्मा में स्थिर हो जाते हैं। यह द्रष्टा, स्प्रष्टा, श्रोता, ज्ञाता, मानने वाला जीवात्मा भी परमात्मा में स्थिर हो जाता है।[१४k]

पञ्चम प्रश्न है कि जो व्यक्ति अन्तिम काल में 'ओम्' का ध्यान करता है, उससे वह किस लोक को अपने वश में करता है ? पिप्पलाद कहते हैं ओंकार की उपासना से इहलोक एवं परलोक के सभी इच्छित पदार्थों की प्राप्ति होती है।[१४l] जो 'अ' इस मात्रा का ध्यान करता है वह तपादि के द्वारा शासक बन जाता है। जो दो मात्रा का ध्यान करता है वह यजुर्विद्या से सोमलोक की प्राप्ति करता है। जो त्रिमात्रा का ध्यान करता है वह सामविद्या से सभी पापों से मुक्त हो जाता है, जैसे साँप केंचुली से रहित होता है।[१४m]

अन्तिम प्रश्न के उत्तर में पिप्पलाद सोलह कलाओं से युक्त पुरुष का वर्णन करते हैं। प्राण, श्रद्धा, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश, इन्द्रियां, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम से सोलह कलायें हैं।[१४n] जैसे नदी समुद्र को प्राप्त करके अपने नाम व रूप को छोड़ देती है, ऐसे ही परमतत्त्व की प्राप्ति के बाद इन सोलह कलाओं का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। उसी परम पुरुष को जानकर व्यक्ति मृत्यु के महाकष्ट से दूर हो जाता है।[१४o]

इस प्रकार यह उपनिषद् प्रश्नों के माध्यम से ब्रह्मसाक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त करती है ।

मुण्डकोपनिषद् :

यह उपनिषद् अथर्ववेद से सम्बद्ध है। इसमें तीन मुण्डक हैं। प्रथम मुण्डक में परा, अपरा विद्या एवं यज्ञ का महत्त्व बताया है। द्वितीय मुण्डक में सृष्टि प्रक्रिया एवं ब्रह्म की साधना का विषय है। तृतीय मुण्डक में ईश्वर, जीव, प्रकृति के स्वतन्त्र अस्तित्व एवं आध्यात्मिक चेतना के विविध स्तरों का वर्णन है।

उपनिषद् का प्रारम्भ परा एवं अपरा विद्या के वर्णन से होता है। चार वेद एवं छः वेदाङ्ग अपरा विद्या हैं। परा विद्या वह है जिससे ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।[१५a] यह संसार परमात्मा से उसी प्रकार उत्पन्न होता है, जिस प्रकार मकड़ी से जाला।[१५b] अग्निहोत्र की अनिवार्यता का विधान करते हुए कहा है कि जिस गृहस्थ के यहाँ दर्शपौर्णमास, चातुर्मास्य, अतिथि सत्कार आदि से युक्त यज्ञ नहीं होता, उसके

---

[१५] **मुण्डकोपनिषद्** (a) १/१/५ (b) १/१/७ (c) १/२/३ (d) १/२/६ (e) १/२/९/ (f) १/२/१२ (g) २/२/४ (h) २/२/८ (i) ३/१/१ (j) ३/२/९

अभ्युदय का नाश हो जाता है।[१५c] देवयज्ञ की आहुतियाँ 'एहि एहि' कहकर उसे ब्रह्मलोक तक ले जाती हैं।[१५d] अविद्या ग्रस्त व्यक्ति स्वयं को कृतार्थ मानकर ज्ञान उपासना से दूर हटकर केवल कर्म में फंसा रहता है और जीवन के ध्येय 'ब्रह्मप्राप्ति' को कभी प्राप्त नहीं करता।[१५e]

ब्रह्म प्राप्ति उनको होती है जो भिक्षाचरण करते हुए अरण्य में तप एवं श्रद्धा का पालन करते है। इस परमविद्या को पाने के लिए श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु का सान्निध्य आवश्यक है -

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्, समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।[१५f]

ब्रह्मप्राप्ति के लिए उपनिषद् विद्या का धनुष लेकर, उपासना के बाण के द्वारा अक्षर ब्रह्म के लक्ष्य को वेधना चाहिए। 'ओम्' रूपी धनुष पर आत्मा रूपी बाण को रखकर पूर्ण तन्मयता से ब्रह्म रूपी लक्ष्य को पाया जा सकता है -

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।[१५g]

गुरुदत्त विद्यार्थी इसकी व्याख्या में लिखते हैं -

Shoot it with all your force and vigilance, and just as the arrow is pierced into mark, so is the soul lodged in the Divinity.[१०b]

इन्द्रियातीत परब्रह्म का साक्षात्कार होने पर सभी संशय पूर्णतः दूर हो जाते हैं और ऐसे ब्रह्मज्ञानी के सभी कर्म भी क्षीण हो जाते हैं।[१५h]

तृतीय मुण्डक में जीवात्मा एवं परमात्मा का पक्षी रूप में तथा प्रकृति का वृक्ष रूप में वर्णन करते हुए कहा है कि जीवात्मा व परमात्मा प्रकृति के साथ रहते हैं परन्तु जीवात्मा प्रकृति का भोग करता है, जबकि परमात्मा उसे देखता है।[१५i] ब्रह्म की प्राप्ति नेत्र, वाणी, तप व कर्म से नहीं होती अपितु ज्ञान प्रसाद से होती है। जो ब्रह्म को जान लेता है, वह स्वयं ब्रह्म ही हो जाता है। उसके कुल में भी कोई अब्रह्मवित् नहीं रहता। वह शोक और पाप को नष्ट करके अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है।[१५j]

इस प्रकार यह उपनिषद् अग्निहोत्र महिमा, ब्रह्म साक्षात्कार के अधिकारी, साक्षात्कार के प्रयोजन, त्रैतवाद आदि का वर्णन करती है।

माण्डूक्योपनिषद् :

इसका सम्बन्ध अथर्ववेद से है। इसमें केवल १२ मन्त्र हैं। ब्रह्मविद्या के सन्दर्भ में यह उपनिषद् अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इस उपनिषद् पर गौडपादाचार्यकृत 'माण्डूक्य कारिका' प्राप्ति होती है। यह नवीन वेदान्त की मूल है। इसमें ओंकार ब्रह्म का वर्णन करते हुए उसे सर्वव्यापक, कर्त्ता, एवं हर्त्ता बताया गया है।

ओम् का महत्त्व वर्णित करते हुए कहा है कि संसार में दृश्यमान भूत, वर्तमान और भविष्य सब कुछ 'ओम्' का प्रकाशक है। इनसे भिन्न भी जो त्रिकालातीत है, वह भी ओंकार ही है।[१६a]

तीन काल से परे जीव व ब्रह्म भी ओंकार के स्वरूप में ही समाहित है। वस्तुतः जीव, प्रकृति, ईश्वर तीनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। जीव व प्रकृति के बिना ईश्वर की कल्पना सम्भव ही नहीं है। जीव व प्रकृति ईश्वर की अनन्त महिमा के प्रख्यापक है, इसलिए ऋषि कहते हैं कि सब कुछ ओंकार ही है।

यह सब कुछ ब्रह्म ही है। मुझमें व्याप्त आत्मा ब्रह्म है। यह चार भागों वाला है -

सर्वं ह्येतद् ब्रह्म। अयमात्मा ब्रह्म। सोऽयमात्मा चतुष्पात्।[१६b]

'अयमात्मा ब्रह्म' को स्पष्ट करते हुए ऋषि दयानन्द लिखते हैं - अर्थात् समाधिदशा में जब योगी को परमेश्वर प्रत्यक्ष होता है तब वह कहता है कि यह जो मेरे में व्यापक है, वही ब्रह्म सर्वव्यापक है।[१d]

आगे चतुष्पात् ब्रह्म के विभाग को स्पष्ट किया गया है -

प्रथम पाद - जागरितस्थान अर्थात् जागृतावस्था में, जब बुद्धि बहिर्मुख होती है, सात अङ्गों से युक्त, उन्नीस मुख वाला, स्थूल जगत् का भोक्ता, सब नरों का भोग करने वाला (वैश्वानर) प्रथम पाद है।[१६c]

सात अंग ये हैं - सिर, नेत्र, कान, वाणी, रसना, हृदय और पैर।

उन्नीस मुख ये हैं - पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण एवं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। जागृतावस्था में जीव इनके माध्यम से स्थूल संसारी वस्तुओं का भोग करता है।

द्वितीय पाद - स्वप्नस्थान में, अन्तर्मुखी प्रज्ञा वाला, सात अंगों से युक्त, उन्नीसमुख वाला, अन्दर ही संस्कार जन्य वस्तु का भोक्ता 'तैजस' नाम वाला द्वितीय पाद है।[१६d]

तृतीय पाद - सुषुप्ति अवस्था में जागृत व स्वप्न से परे समस्त ज्ञान की एकीभूत अवस्था में, आनन्द की अनुभूति वाला, प्राज्ञ नाम वाला तृतीय पाद है।[१६e]

चतुर्थ पाद - वह सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, अन्तर्यामी आत्मा रूप अन्तिमपाद है। वह पूर्वोक्त अन्तःप्रज्ञः, बहिःप्रज्ञ आदि से सर्वथा रहित शान्त, शिव, अद्वैत आदि रूपों से युक्त है।[१६f]

यह जो जीव के अन्दर वास करनेवाला अक्षर रूप 'ओम्' है। वह तीन मात्रा में विभक्त है - अकार उकार एवं मकार।

प्रथम मात्रा अकार जागरित स्थान वैश्वानर है। यह वैश्वानर रूप ही समस्त जगत् का कर्त्ता है। जो इस तत्त्व को जानता है वह सभी कामनाओं को पूर्ण कर लेता है।

द्वितीय मात्रा उकार स्वप्नस्थान तैजस है। अ तथा म् के मध्य होने से यह उत्कर्ष का कारण है। इस रहस्य का ज्ञाता ज्ञान के विस्तार को प्राप्त करता है।

---

[१६] **माण्डूक्योपनिषद्** (a) १ (b) २ (c) ३ (d) ४ (e) ५ (f) 7 (g) ९-११ (h) १२

तृतीय मात्रा मकार सुषुप्तस्थान प्राज्ञ है। प्राज्ञ स्थिति में वैश्वानर एवं तैजस का अनुमान किया जाता है। इस स्थिति में समस्त बाह्य दुःखों से परे असीम आनन्द की अनुभूति होती है।[१६g]

इनसे परे चतुर्थ पाद अमात्र है। जहाँ पूर्वोक्त अनुभूतियों से सर्वथा रहित शिव अद्वैत रूप ओंकार है। जब जीवात्मा इसे जान लेता है तो वह स्वयं में परब्रह्म की अनुभूति करता है और सर्वविध दुःखों से रहित होकर मुक्त हो जाता है।[१६h]

इस प्रकार यह उपनिषद् जीव की त्रिविध अवस्थाओं का वर्णन करते हुए शनैः शनैः इनसे सर्वथा निर्मुक्त ब्रह्म की प्राप्ति का मार्ग स्पष्ट करती है।

तैत्तिरीयोपनिषद् :

यह उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध है। शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्द वल्ली एवं भृगुवल्ली के रूप में यह तीन भागों में विभाजित है। शिक्षावल्ली में पाँच महासंहिता एवं वैदिक दीक्षान्त भाषण का वर्णन है। ब्रह्मानन्द वल्ली में सृष्टि प्रक्रिया एवं पाँच कोशों का विवेचन है। भृगुवल्ली में पञ्चकोशों को लांघकर ब्रह्म प्राप्ति एवं अन्न निन्दा न करने का उपदेश दिया है।

शिक्षाध्याय वल्ली के प्रारम्भ में गुरु-शिष्य संकल्प करते हैं - **सह नौ यशः। सह नौ ब्रह्मवर्चसम्।** हम दोनों का यश एवं ब्रह्मवर्चस साथ-साथ बढ़े। गुरु शिष्य का यह सहभाव शिक्षा-व्यवस्था को सर्वथा नूतन दृष्टि से ओत-प्रोत कर देता है।

इसके पश्चात् पाँच अधिकरणों में पाँच महासंहिता का विवेचन है। इन महासंहिताओं का समुचित प्रयोग करने वाला व्यक्ति प्रजा, पशु, ब्रह्मवर्चस, अन्नाद्य और प्रतिष्ठा से सम्पन्न हो जाता है।[१७a]

पाँच महासंहिता निम्न हैं -

(i) अधिलोक, (ii) अधिज्यौतिष, (iii) अधिविद्य, (iv) अधिप्रज, (v) अध्यात्म

इन सभी में पूर्वरूप, उत्तररूप, संधि एवं सन्धान का प्रयोग हुआ है। वर्णों का सन्निकर्ष संहिता है। इन महासंहिताओं में सन्धि सिद्धवस्तु का वाचक है। सन्धान हेतु का वाचक है।

अधिलोक में पृथिवी पूर्वरूप, द्युलोक उत्तररूप, आकाश सन्धि एवं वायु सन्धान है। अधिज्यौतिष में अग्नि पूर्वरूप, आदित्य उत्तररूप, जल सन्धि एवं विद्युत् का प्रकाश सन्धान है। अधिविद्य में आचार्य पूर्वरूप, शिष्य उत्तर रूप, विद्या सन्धि एवं प्रवचन सन्धान है। अधिप्रज में माता पूर्वरूप, पिता उत्तररूप, प्रजा सन्धि एवं मैथुन सन्धान है। अध्यात्म में कर्मेन्द्रियां पूर्वरूप, ज्ञानेन्द्रियाँ उत्तररूप, वाणी सन्धि एवं जिह्वा सन्धान है।

---

[१७] **तैत्तिरीयोपनिषद्** (a) १/३/७ (b) १/५/१-३ (c) १/९/१ (d) १/११/१-४ (e) २/८ (f) २/९ (g) ३/५-६ (h) ३/७-१० (i) ३/१०/५

आचार्य ने यहाँ महासंहिता (Great Adjustment) का उपदेश दिया है। इन्हें ध्यान से देखें तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये ध्यानपूर्वक एक दूसरे के लिए बनाई गई है। यह संहिताज्ञान नास्तिक को भी आस्तिक बना देता है।[१८c]

शिक्षावल्ली के चतुर्थ अनुवाक में चार व्याहृतियों का वर्णन है। भूः भुवः स्वः ये तीन प्रसिद्ध व्याहृतियाँ हैं। 'महः' यह व्याहृति माहाचमस्य को अभिप्रेत है। भूः पृथिवी, अग्नि, ऋग्वेद व प्राण का वाचक है। भुवः अन्तरिक्ष, वायु, सामवेद व अपान का वाचक है। स्वः द्यु, आदित्य, यजुर्वेद और व्यान का वाचक है। महः आदित्य, चन्द्रमा, ब्रह्म और अन्न का वाचक है।[१७b]

स्वाध्याय एवं प्रवचन जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में अनिवार्य है।[१७c] वेदाध्ययन के पश्चात् दीक्षान्त भाषण के रूप में आचार्य का उपदेश इस उपनिषद् की विशिष्ट देन है। आचार्य स्नातक से कहता है सत्य बोलना। धर्म का पालन करना। माता, पिता, आचार्य, अतिथि को देवता मानकर सेवा करना।[१७d] इन वाक्यों में जीवन का सर्वोच्च सन्देश छिपा है।

ब्रह्मानन्द वल्ली में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश का वर्णन है। ब्रह्मानन्द की असीमता का वर्णन यहां पर किया गया है। ब्रह्मानन्द की प्राप्ति श्रोत्रिय एवं कामनाओं में असक्त व्यक्ति को होती है।[१७e] वाणी जहाँ से लौट आती है, मन से जिसे पाया नहीं जा सकता, उस ब्रह्म को प्राप्तकर व्यक्ति भयमुक्त हो जाता है।[१७f]

भृगु वल्ली में एक कथा के माध्यम से ब्रह्म दर्शन की यात्रा को स्पष्ट किया है। वरुण का पुत्र भृगु क्रमशः अन्न, प्राण, मन, विज्ञान व आनन्द को ब्रह्म जानता है। भृगु व वरुण की इस कथा का सम्यक् ज्ञान व्यक्ति को प्रतिष्ठित बना देता है। वह प्रजा, पशु, ब्रह्म तेज से महान् हो जाता है।[१७g]

अन्न की निन्दा न करे। अन्न को बढ़ावे। कभी भी अतिथि को मना न करें - ये व्रत हैं।[१७h]

जब व्यक्ति ब्रह्म को जान लेता है तो वह प्रसन्नता से साम-गान करने लगता है। वह अनुभव करता है कि मैं अब तक केवल भोग्य था - अब भोक्ता बन गया हूँ।[१७i]

इस प्रकार इस उपनिषद् में व्यक्ति के सम्पूर्ण ध्येय की अपूर्व व्याख्या की गई है। व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार एवं दायित्व बोध का भी उल्लेख है। उत्तरोत्तर विकास करते हुए स्थूल जीवन से मोक्षमार्ग तक का बोध प्रस्तुत किया गया है।

ऐतरेयोपनिषद् :

यह उपनिषद् ऋग्वेद के ऐतरेय आरण्यक से सम्बद्ध है। इसमें तीन अध्याय हैं। प्रथमाध्याय में तीन खण्ड है। तथा द्वितीय एवं तृतीय अध्याय में एक-एक खण्ड है। इसमें सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया का वर्णन करते हुए परमात्मा, लोक, विराट् पुरुष एवं आठ लोकपालों का वर्णन किया गया है। विदृति द्वार, गर्भाधान एवं प्रज्ञान ब्रह्म का उपदेश दिया गया है।

उपनिषद् का प्रारम्भ भौतिक सृष्टि की रचना से पूर्व की स्थिति के वर्णन से हुआ है। सर्वप्रथम केवल परमात्मा ही था। सृष्टि का स्वरूप भी नहीं था। तब परमात्मा ने विचार किया कि प्राणी शरीर और पृथिवी आदि लोकों की रचना की जानी चाहिए -

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन मिषत् स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति।[१८a]

ईक्षण के पश्चात् उसने अम्भस्, मरीची, मर और आपस नामक चार लोकों की रचना की। इन लोकों की रक्षा के लिए लोकपालों की रचना की। लोकपालों की रचना के लिए उसने आप् (तन्मात्रा) से पुरुष (विराट् पुरुष/हिरण्यगर्भ) की रचना करके उसे तपाया।[१८b] उसको तपाने से उसके मुख से वाक् एवं अग्नि, नासिका से प्राण एवं वायु, नेत्रों से चक्षु और आदित्य, कानों से श्रोत्र शक्ति एवं दिशाएँ, त्वक् से लोम और वनस्पति, हृदय से मन एवं चन्द्रमा, नाभि से अपान एवं मृत्यु एवं शिश्न से रेत एवं आप् (जल) प्रकट हुए।[१८c] इस प्रकार चार लोकों से अग्नि, वायु आदि आठ लोकपालों की रचना हुई। इनके साथ भूख प्यास को जोड़ दिया गया। अब ये सभी भूख से व्याकुल हो गए। अपनी प्रतिष्ठा खोजने लगे। इनके लिए गाय और घोड़े को प्रतिष्ठा के लिए लाया गया। पर ये देवता इससे सन्तुष्ट नहीं हुए। अन्ततः पुरुष को लाया गया। तब वे सन्तुष्ट होकर बोले - **सुकृतं बतेति पुरुषो वाव सुकृतम्।**[१८d] जब वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, त्वक्, मन, अपान और वीर्य पुरुष शरीर में तत्तत् स्थानों पर प्रतिष्ठित हो गये तो इनकी भूख-प्यास निवृत्ति के लिए अन्न की रचना की गई।[१८e]

इतनी रचना के पश्चात् जीवात्मा का वर्णन किया गया है। जीवात्मा कपाल की सीमा रूप ब्रह्मरन्ध्र से शरीर में प्रविष्ट हुआ। इसे विदृति द्वार कहते हैं। इसे 'नान्दन' भी कहते हैं। यहाँ परमानन्द की अनुभूति होती है - स एतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत। सैषा विदृतिर्नामद्वास्तदेतन्नान्दनम्। यहाँ इसके तीन स्थान हैं। तीन अवस्थाएँ हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति। पर ये सभी स्वप्न हैं जब तक कि ब्रह्मसाक्षात्कार नहीं होता।[१८f]

जब वह जागृत होता है तब उसे ब्रह्म के दर्शन होते हैं। सर्वत्र व्यापक ब्रह्म को देखकर वह कहता है - इसको मैंने देख लिया है -

स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततमपश्यदिदमदर्शमितीऽ।[१८g]

'इदमदर्शम्' (यह ब्रह्म मैंने देख लिया) यहाँ 'इदम्' के साथ 'अदर्शम्' का द्+र जोड़ने से 'इदन्द्र' बना। इदन्द्र को ही 'इन्द्र' कहते हैं, क्योंकि देवता परोक्षप्रिय होते हैं - **इदन्द्रो ह वै नाम इन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेण। परोक्षप्रिया इव हि देवाः।**[१८h]

---

[१८] **ऐतरेयोपनिषद्** (a) १/१/१ (b) १/१/३ (c) १/१/४ (d) १/२/३ (e) १/३/१ (f) १/३/१२ (g) १/३/१३ (h) १/३/१४ (i) २/१/१ (h) २/१/५ (k) ३/१/१ (l) ३/१/४

दूसरे अध्याय में उपनिषद् का ऋषि गर्भाधान का वर्णन करते हुए कहता है कि मूल रूप में अपने सम्पूर्ण अङ्गों के सार भूत 'रेत' रूप में गर्भ पुरुष में ही होता है उसी को जब स्त्री में सिंचित करता है तो मानो वह स्वयं को ही सिंचित करता है।[१८i]

वामदेव ऋषि ने गर्भ में रहते हुए ही कहा कि मैंने गर्भ में ही सभी जन्मों को देख लिया। मैं लोहे के समान बन्धनों से जकड़ा हुआ था। जैसे जाल में बन्धा बाज बन्धनों को तोड़कर उड़ जाये, वैसे ही इन बन्धनों को तोड़कर मैं आप्तकाम हो गया हूँ।[१८j]

तीसरे अध्याय में आत्मा की विवेचना की है - कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे।[१८k] परमात्मा का वर्णन करते हुए कहा है कि स्थावर, जंगम आदि सब प्रज्ञान ब्रह्म में प्रतिष्ठित है। यह लोक प्रज्ञान नेत्र है। उपासक इसी प्रज्ञ आत्मा की उपासना करके इस लोक से उठकर स्वर्ग लोक में सभी कामनाओं को प्राप्त करके अमृत हो जाता है।[१८l]

इस प्रकार इस उपनिषद् में सृष्टि प्रक्रिया, आत्मा एवं परमात्मा के विविध प्रसङ्गों का तात्त्विक एवं रोचक वर्णन किया गया है।

छान्दोग्योपनिषद् :

इसका सम्बन्ध सामवेद से है। इसमें कुल ८ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय प्रपाठकों में विभाजित है। यह उपनिषद् बृहदारण्यक के समान प्राचीन है और आकार में भी उससे थोड़ा ही छोटा है। इसमें विविध संवादों के माध्यम से ज्ञान के गम्भीर पक्षों का मन्थन किया गया है। इतिहास के भी अनेक दुर्लभ प्रसंग इस उपनिषद् में प्राप्त होते हैं आत्मज्ञान के सर्वोत्तम भण्डार के रूप में यह प्रसिद्ध है।

इस उपनिषद् का आरम्भ उद्गीथ (ओम्) की उपासना और माहात्म्य गान से हुआ। प्रथम प्रपाठक के सभी तेरह खण्डों में प्रणवोपासना के ही विविध रूपों की अभिव्यक्ति हुई है।

उपनिषत्कार कहते हैं - पञ्च महाभूतों का रस पृथिवी है, पृथिवी का रस जल है, जलों का रस ओषधियाँ हैं, ओषधियों का रस पुरुष है, पुरुष का रस वाणी है, वाणी का रस ऋक् (स्तुति) है, ऋक् का रस साम (प्रभु-गायन) है, साम का रस उद्गीथ = ओंकार का उद् = उच्चस्वर से 'गीथ' अर्थात् गायन है।[१९a]

उद्गीथ-ओंकार का उच्चस्वर से गान रसों का रस है, परम रस है, सर्वोच्च रस है -

स एष रसानां रसतमः परमः परार्ध्योऽष्टमो यदुद्गीथः।[१९b]

---

[१९] **छान्दोग्योपनिषद्** (a) १/१/२ (b) १/१/३ (c) १/२/६ (d) १/२/१-६ (e) १/२/८ (f) १/३/६ (g) १/४/४ (h) १/१०/१-६ (i) १/१२/५ (j) २/१०/५ (k) २/२३/१ (l) ३/१२/१ (m) ३/१२/६ (n) ४/१-३ (o) ४/४-९

ऋषि कहते हैं कि जैसे जोड़े के मिलने से नूतन सृष्टि का निर्माण होता है, वैसे ही वाणी और प्राण तथा ऋक् और साम के जोड़े से 'ओम्' इस अक्षर की सृष्टि होती है। जो व्यक्ति ओंकार की उपासना करता है वह निश्चय ही आप्तकाम हो जाता है।[१९c]

एक आख्यायिका से ओम् और प्राण का पारस्परिक सम्बन्ध बताया गया है। देव और असुर दोनों प्रजापति की सन्तान है। तब देवताओं ने उद्गीथ को ग्रहण कर लिया कि इससे हम असुरों का अभिभव कर देंगे। देवताओं ने नासिक्य प्राण, वाणी, चक्षु, श्रोत्र एवं मन को उद्गीथ मानकर उपासना की। पर इन सभी को असुरों ने पाप से युक्त कर दिया। इन सभी का प्रयोग अच्छे एवं बुरे दोनों कार्यों में हो सकता है, अतः इनमें आसुरी शक्ति का भी आविर्भाव हो गया।[१९d]

अन्ततः देवताओं ने मुख्य प्राण (आत्मा) की ही उद्गीथ रूप में आराधना की। तब आसुरी शक्ति ऐसे ही पराजित हो गई जैसे कठोर पत्थर से टकरा मिट्टी का ढेला चूर-चूर हो जाता है। संसार में भी ऐसे उपासक से टकराने वाला इसी प्रकार नष्ट हो जाता है।[१९e]

उद्गीथ का नाम भी रहस्य पूर्ण है। उत् प्राण का वाचक है, वाणी गीः है, अन्न थम् है, अन्न में सब कुछ स्थित है -

प्राण एवोत्प्राणेन ह्युत्तिष्ठति। वाग्गीर्वाचो ह गिर् इत्याचक्षतेऽन्नं थमन्ने हीदं सर्वं स्थितम्।[१९f]

'ओम्' यह स्वर है, अक्षर है, अमृत है, अभय है। ओम् में लीन होकर देव लोग अमृत और अभय हो गए।[१९g]

महात्मा उषस्ति चाक्रायण के संवाद में उद्गीथ का महत्त्व बताया है। उषस्ति चाक्रायण बड़े विद्वान् ऋषि थे। वे भूख से सताये हुए अपनी पत्नी के साथ एक गाँव में निवास करते हैं। उन्होंने हाथीवान से भिक्षा माँगी। हाथीवान के पास जूठे उड़द (कुल्माष) रखे थे। ऋषि ने उससे वहीं माँग लिए। हाथीवान ने उनसे कहा जल भी ले लो। ऋषि कहते है कि यह तो जूठा है। उड़द भी जूठे हैं, पर उनके बिना तो जीवन ही नष्ट हो जाता, पर पानी तो सर्वत्र है।[१९h] बाद में इसी उषस्ति ने एक राजा के यज्ञ में ऋत्विक् कर्म का निर्वहन करते हुए उद्गीथ के महत्त्व को अभिव्यक्त किया।

ऋषि पशु जगत् में भी उद्गीथ का अनुकरण देखते हैं कुत्ते जब परस्पर चिल्लाते हैं तो वे कहते हैं 'ओम' की कृपा से हम खाते हैं, उसी की कृपा से हम पीते हैं। देव, वरुण, प्रजापति हमारे लिए अन्न लाते हैं -

ओ३मदा३मो३पिबा३मो३देवो वरुणः प्रजापतिः सविता३न्नमिहा३ऽऽहरद्।[१९i]

दूसरे प्रपाठक में पञ्चविध और सप्तविध सामगान का विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। साम के सात अंगों, हिंकार, प्रस्ताव, आदि, प्रतिहार, उद्गीथ, उपद्रव और निधन में २२ अक्षर हैं। इनके २१ अक्षर से आदित्य लोक पर विजय प्राप्त करता है और २२वें से परम ज्योति पर विजय पा लेता है।[१९j]

गृहस्थ के यज्ञ, अध्ययन और दान रूप तीन धर्म स्कन्ध है । तप वानप्रस्थ की आधार है। ब्रह्मचर्य पूर्वक आचार्यकुलवास ब्रह्मचारी का आधार है ये सभी पुण्यकारी है।[१९k]

यह सारा संसार गायत्री रूप है - गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किञ्च वाग्वै गायत्री।[१९l] गायत्री में चार चरण होते हैं और छः छः अक्षरों वाली है। ऋचा में कहा है गायत्री अपने चार चरण से परम पुरुष के एक अंश का ही वर्णन करती है शेष तीन चरण द्युलोक से परे हैं ।[१९m]

गाड़ीवान रैक्व ऋषि ने राजा जानश्रुति को संवर्ग विद्या का उपेदश दिया है। रैक्व ऋषि एक गाड़ी के नीचे बहुत साधारण जीवन व्यतीत करते हैं। पर उनका ज्ञान अपार है। राजा उनसे ज्ञान प्राप्त करके कृतकृत्य हो गया।[१९n]

सत्यकाम जाबाल की कथा में सत्यभाषण का महत्त्व बताया गया है। उन्हें बैल, अग्नि, हंस और मद्गु (वायु) ने ब्रह्मज्ञान दिया।[१९o]

इस उपनिषद् के पञ्चम प्रपाठक में प्राण एवं इन्द्रियों के विवाद में प्राण की तरह महान् बनने का सन्देश दिया गया है।

श्वेतकेतु एवं राजा जैबलि प्रवाहण के संवाद में जीवन मरण के गम्भीर प्रश्नों की मीमांसा की गई है। सकाम कर्म और निष्काम कर्म की विवेचना करते हुए कहा गया है कि सकाम उपासक दक्षिणायन में पितृयाण से चन्द्रलोक जाते हैं और निष्काम उपासक उत्तरायण में देवयान से ब्रह्मलोक जाते हैं।[२०a]

अश्वपति राजा द्वारा महाशाल महाश्रोत्रिय विद्वानों को वैश्वानर ब्रह्म का उपदेश दिया गया है।[२०b] रहस्य ज्ञान पूर्वक अग्निहोत्र करनेवाले के सभी पाप ऐसे जल जाते हैं जैसे सरकण्डे की रूई अग्नि में जल जाती है।[२०c]

नारद व सनत्कुमार के संवाद[२०d] में आत्मवित् बनने का उपदेश है। नारद ने चार वेद, इतिहास, पुराण, राशिविद्या, नीतिशास्त्र आदि विविध विद्याएं पढ़ी हैं, पर वे असंतुष्ट हैं। नारद कहते हैं - सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि, नात्मविच्छ्रुतं ह्येव मे भवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति। सोऽहं भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्य पारं तारयतु।[२०e]

अन्तिम अष्टम प्रपाठक में हृदयाकाश में ब्रह्म को ढूंढने का उपदेश है। शरीर को ब्रह्मपुर कहा गया है और इसमें दहर अर्थात् छोटा सा कमल जैसा घर सा हृदय है, इसमें ब्रह्म का वास है, उसे खोजना चाहिए-

यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन्यदन्तस्तदन्वेष्टव्यम्, तद्वाव विजिज्ञासितव्यम् ।[२०f]

---

[२०] **छान्दोग्योपनिषद्** (a) ५/३-१० (b) ५/११-२४ (c) ५/२४/३ (d) ७/१-२६ (e) ७/१/३ (f) ८/१/१ (g) ८/५/३ (h) ८/७-१५

यहाँ पर अनाशकायन यज्ञ, अरण्यायन, ऐरम्मदीय सरोवर, अश्वत्थ वृक्ष और अपराजिता ब्रह्मपुरी का भी सुन्दर वर्णन किया गया है।[२०g]

प्रजापति तथा इन्द्रविरोचन की कथा[२०h] में आत्मा के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है।

इस प्रकार यह उपनिषद् विविध संवाद एवं प्रसंगों के द्वारा गम्भीर रहस्यपूर्ण ज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट करती है।

बृहदारण्यकोपनिषद् :

यह उपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद से सम्बद्ध है। इसमें कुल आठ अध्याय हैं। इसमें जनक सभा में याज्ञवल्क्य के अन्य महानुभावों से संवाद के माध्यम से ब्रह्मविद्या के जटिल प्रश्नों का समाधान किया गया है। इसके पञ्चम व षष्ठ अध्याय खिल काण्ड भी कहे जाते हैं। इनमें प्रजापति द्वारा द से दम, दान व दया का उपदेश, गायत्रयुपासना आदि का रोचक वर्णन है।

इस उपनिषद् का आरम्भ सृष्टि के हय, वाजी, अर्वा एवं अश्वरूप में वर्णन से हुआ है। सृष्टि को अश्वमेध यज्ञ का प्रतीक मानकर व्याख्या की गई है।[२१a] ब्रह्मा की कल्पना मृत्यु के रूप में की गई है।[२१b] प्राणमहिमा का विस्तार से व्याख्यान है।[२१c] यहीं पर कहा गया है कि प्रस्तोता साम गान से पूर्व इनका जप करे - असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मऽमृतं गमय।[२१d]

संसार में तीन लोक हैं - मनुष्य लोक, पितृलोक तथा देवलोक। मनुष्य लोक पुत्र से जीता जाता है। पितृलोक कर्म से तथा देवलोक विद्या से जीता जाता है।[२१e] पुत्र का अर्थ स्पष्ट करते हुए ऋषि कहते हैं - स यद्यनेन किञ्चिदक्षण्याऽकृतं भवति तस्मादेनं सर्वस्मात् पुत्रो मुञ्चति तस्मात् पुत्रो नाम।[२१f]

दूसरे अध्याय में गार्ग्य दृप्त बालाकि और काशी के राजा अजातशत्रु का संवाद है। गार्ग्य अजातशत्रु के पास पहुँच कर कहता है मैं तुझे ब्रह्म का उपदेश दूँगा - ब्रह्म ते ब्रवाणीति। गार्ग्य ने ब्रह्म के विविध रूप बताये पर अजातशत्रु उससे सहमत नहीं हुआ। अन्ततः अजातशत्रु ने ही गार्ग्य को ब्रह्म का उपदेश दिया।[२१g]

याज्ञवल्क्य मैत्रेयी संवाद में याज्ञवल्क्य कहते हैं - अमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेन। सांसारिक पदार्थों से अमृतत्त्व प्राप्ति नहीं हो सकती। आत्मा की उपासना करनी चाहिए जिससे सब कुछ विदित हो जाता है -

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।[२१h]

---

[२१] **बृहदारण्यकोपनिषद्** (a) १/१/१ (b) १/२ (c) १/३, ५ (d) १/३/२८ (e) १/३/१६ (f) १/३/१७ (g) २/१-३ (h) २/४ (i) २/५

मधुविद्या का उपदेश देते हुए याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा ईश्वर ने दोपायों और चौपायों की पुरी बनाई और सर्वत्र व्याप्त है।[२१i]

तृतीय अध्याय में विदेहराज जनक के 'बहुदक्षिण यज्ञ' का वर्णन है। इसमें जनक 'अनूचानतम' को खोजना चाहते हैं। जनक ने कहा कि जो आप विद्वानों में से 'ब्रह्मिष्ठ' हो वह इन एक हजार गायों को ले जाए जिनके प्रत्येक सींग पर दस-दस तौला सोना बन्धा हुआ है। यह सुनकर याज्ञवल्क्य ने सामश्रवा को गायों को ले जाने का आदेश दिया। तब स्वयं को ब्रह्मिष्ठ सिद्ध करने के लिए याज्ञवल्क्य को अश्वल, आर्तभाग, भुज्यु, उषस्त चाक्रायण, कहोल, गार्गी, उद्दालक और विदग्ध शाकल्य के अनेक अति कठिन प्रश्नों का उत्तर देना पड़ा।

चतुर्थ अध्याय में याज्ञवल्क्य द्वारा जनक को दिया गया उपदेश वर्णित है। जनक याज्ञवल्क्य से पूछते हैं पशु चाहिए या अण्वन्त (सूक्ष्म पदार्थों का रहस्य)? जनक ने याज्ञवल्क्य को बताया कि उसको जित्वा शैलिनि, शौल्वायन, वर्कुवार्ष्ण, गर्दभीविपीत भारद्वाज, सत्यकाम जाबाल, शाकल्य आदि ने ब्रह्म का ज्ञान दिया है। फिर याज्ञवल्क्य ने जनक को तीन अवस्थाओं का ज्ञान दिया। आत्मा और पुनर्जन्म का ज्ञान दिया। पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा से ऊपर उठकर जीवन यापन का उपदेश दिया।

पञ्चम अध्याय में खम्, द, हृदय, सत्यब्रह्म, भूर्भुवः स्वः, वैश्वानर, वाक् ब्रह्म, विद्युत् ब्रह्म, तपःस्वरूप, प्राण ब्रह्म आदि का विवेचन है।

षष्ठ अध्याय में मन्थ कर्म का विवेचन है। गर्भाधान की भी विशेष व्याख्या यहाँ की गई है। स्त्री को यज्ञ रूप बताया है। शुक्ल पुत्र, कपिल पुत्र, श्याम पुत्र, पण्डिता कन्या, विद्वान् पुत्र प्राप्ति के नियम भी यहाँ वर्णित हैं।

इस प्रकार इस उपनिषद् में संवाद विधि व अन्य प्रकार की तात्त्विक विवेचना से अनेक आध्यात्मिक पक्षों को स्पष्ट किया गया है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् :

यह उपनिषद् कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध है। छः अध्यायों से युक्त यह उपनिषद् पद्यनिबद्ध है। इसमें प्रकृति, पुरुष, क्षर, काल, स्वभाव, नियति आदि के साथ त्रिगुण, माया, प्रकृति आदि का उल्लेख मिलता है। शिव के उल्लेख के कारण कतिपय विद्वान् इसे शैव उपनिषद् भी मानते हैं।

उपनिषद् का आरम्भ ब्रह्माण्ड का कारण ढूँढने से हुआ। ब्रह्मवादी लोग विचार करते हैं कि इस ब्रह्माण्ड का सञ्चालक काल, स्वभाव, नियति आदि क्या है? ऋषि कहते हैं ब्रह्माण्ड का कारण ब्रह्म है। जिसे यहाँ पर देवात्मशक्ति कहा गया है।[२२a] यह शरीर नदी रूप है।[२२b] ईश्वर, जीव, प्रकृति का वर्णन करते हुए ईश्वर ज्योति के दर्शन के लिए कहा है कि उपासक देह को नीचे की अरणि और प्रणव को

---

[२२] **श्वेताश्वतरोपनिषद्** (a) १/३ (b) १/५ (c) १/१४ (d) २/८ (e) ४/५ (f) ५/९ (g) ६/२०

ऊपर की अरणि बनाकर ध्यान की रगड़ के अभ्यास से छिपी हुई अग्नि की तरह आत्मा व परमात्मा का दर्शन करें।[२२c]

द्वितीय अध्याय में योग द्वारा ब्रह्मदर्शन की विधि स्पष्ट की गई है। जैसे तैरते समय सिर, गर्दन और छाती को ऊपर रखते हैं वैसे ही इनको उन्नत रखकर इन्द्रिय को मन के अधीन करके और मन को हृदय में धारण कर 'ब्रह्म' की नौका से संसार सागर को पार कर लें।[२२d]

तृतीय अध्याय में ईश्वर की स्तुति की गई है। चतुर्थाध्याय में दो अज, दो पक्षी, दो पुरुष के रूप में भोक्ता भोग्य का वर्णन है। आत्मा (अज) इस अजा (प्रकृति) का भोग करता है और परमात्मा (अज) इसे छोड़ देता है -

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां, बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते, जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ।[२२e]

पञ्चम अध्याय में ब्रह्म और जीव का वर्णन है। जीव की सूक्ष्मता के सन्दर्भ में कहा है कि वह बाल के अग्रभाग के सौंवे हिस्से के भी सौवे हिस्से के बराबर परिमाण वाला है।[२२f]

षष्ठ अध्याय में सृष्टि संचालन में कर्म एवं भाव की भूमिका का वर्णन किया है। संसार के सारे दुःखों का निवारण परमात्मा के साक्षात्कार से ही सम्भव है। इसके अतिरिक्त मार्ग को खोजना ऐसे ही है जैसे आकाश को चमड़े से लपेटना -

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥[२२g]

इस प्रकार इस उपनिषद् में देवात्मशक्ति, योग, ईश्वर, अज, ब्रह्म, जीव आदि का सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

ऋषि दयानन्द और उपनिषद् :

ऋषि दयानन्द अपने ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर उपनिषदों के सन्दर्भ उद्धृत करते हैं। सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास का आरम्भ शन्नो मित्रः शं वरुणः (तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षावल्ली) से हुआ है। तृतीय समुल्लास में ब्रह्मचर्य के नियमों के सन्दर्भ में पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंशतिवर्षाणि[२३a] को उद्धृत करते हैं। इस प्रसंग की ऋषिकृत व्याख्या भी द्रष्टव्य है । इसी समुल्लास में वे तैत्तिरीयोपनिषद् की शिक्षाध्याय वल्ली के ज्ञानसम्पन्न उपदेश वाक्यों को उद्धृत करते हैं। वेदमनूच्याचार्योऽन्ते-वासिनमनुशास्ति०[२४a] का यह सन्दर्भ सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक मूल्यों से ओतप्रोत है। यही कारण

---

[२३] **छान्दोग्योपनिषद्** (a) ३/१६/१-६ (b) ८/१२/१ (c) ६/८/७ (d) ६/८/७ (e) ३/१४/२ (f) ८/७/१
[२४] **तैत्तिरीयोपनिषद्** (a) १/११ (b) ३/१ (c) २/१ (d) २/१

है कि वर्तमान समय में भी अनेक विश्वविद्यालयों में दीक्षान्त भाषण (convocation address) के लिए इन्हीं कालजयी वाक्यों से सन्देश दिया जाता है। पञ्चम समुल्लास में संन्यासविधि के प्रसंग में कठोपनिषद्[२५a] मुण्डकोपनिषद्[२६a], छान्दोग्योपनिषद्[२३b] के सन्दर्भों का उल्लेख है। सप्तम समुल्लास में ईश्वर एवं वेदविषय के सन्दर्भ में मैत्रायणी उपनिषद्[२७] तथा श्वेताश्वतरोपनिषद्[२८a] को उद्धृत किया है।

वेदान्त वाङ्मय के महावाक्यों के रूप में प्रसिद्ध विशिष्ट वाक्य **प्रज्ञानं ब्रह्म**[२९], **अहं ब्रह्मास्मि**[३०], **तत्त्वमसि**[२३c] एवं **अयमात्मा ब्रह्म**[३१] है। इनके माध्यम से जीव ब्रह्म के ऐक्य का प्रतिपादन किया जाता है।[३२] ऋषि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में विस्तार से इनकी सतर्क विवेचना करते हैं। वे 'तत्त्वमसि' इस प्रसिद्ध वाक्य में आये 'तत्' इस पद का अर्थ 'ब्रह्म' नहीं मानते। वे इसके लिए इस वाक्य के मूल सन्दर्भ[२३c] का मन्थन करते हैं। उनका मानना है कि नवीन वेदान्ती 'तत्त्वमसि' के तत् का अर्थ 'ब्रह्म' करते हैं कि जबकि छान्दोग्योपनिषद् के इस प्रकरण में कहीं पर भी 'ब्रह्म' का उल्लेख ही नहीं है।

अष्टम समुल्लास में सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय विषय को स्पष्ट करते हुए भी ऋषि दयानन्द ने अपने मन्तव्य के प्रामाण्य के लिए उपनिषदों के अनेक सन्दर्भ उद्धृत किये हैं। इनमें यतो वा इमानि०[२४b], अजामेकाम्[२८b], नेह नानास्ति[२५b] सर्वं खल्विदं[२३e] आदि उल्लेखनीय हैं।

नवीन वेदान्ती परब्रह्म को 'अभिन्ननिमित्तोपादानकारणकारण' मानते हैं। एतदर्थ वे मुण्डकोपनिषद् (१/१/७) के निम्न वाक्य को उद्धृत करते हैं -

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च।[२६b]

नवीन वेदान्ती इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि जैसे मकरी बाहर से कोई पदार्थ लिए विना, अपने में से ही तन्तु निकालकर जाला बना लेती है, ऐसे ही ब्रह्म अपने में से जगत् बना देता है।

ऋषि इसका कड़ा प्रतिवाद करते हुए कहते हैं कि मकरी का दृष्टान्त इस मत का साधक नहीं अपितु बाधक है क्योंकि वह जड़रूपशरीर तन्तु का उपादान एवं जीवात्मा निमित्त कारण है।

इसी समुल्लास में तैत्तिरीय उपनिषद् के वाक्य तस्माद्वा एतस्मात्०[२४c] की भी व्याख्या की है।

---

[२५] **कठोपनिषद्** (a) २/१३, २३ (b) ४/११ (c) २/६/१०
[२६] **मुण्डकोपनिषद्** (a) ३/२/६, ८-९ (b) १/१/७ (c) २/२/८
[२७] **मैत्रायणी उपनिषद्**, ४/४/९
[२८] **श्वेताश्वतरोपनिषद्** (a) ३/१९, ६/८ (b) ४/५
[२९] **ऐतरेयोपनिषद्** ३/५/३
[३०] **बृहदारण्यकोपनिषद्** १/४/१०
[३१] **माण्डूक्योपनिषद्** २
[३२] सदानन्द, **वेदान्तसार**, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९८७, पृ. ११७

नवम समुल्लास में भिद्यते हृदयग्रन्थिः[२६c], सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म[२४d], यदा पञ्चावतिष्ठन्ते[२५c], य आत्मा अपहतपाप्मा[२३f] आदि वचनों की व्याख्या की है। एकादश समुल्लास में आर्यों के चक्रवर्ती साम्राज्य के इतिहास के सन्दर्भ में मैत्र्युपनिषद्[३३] के अथ किमेतैर्वा० वाक्य को उद्धृत किया है।

ऋषि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के अतिरिक्त संस्कारविधि, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका एवं आर्याभिविनय सहित अपने सभी ग्रन्थों में यथावसर उपनिषदों के प्रमाणों को उद्धृत करते हैं। वे अपने शास्त्रार्थों, प्रवचनों, पत्रों व सामान्य वार्तालाप में भी उपनिषदों के प्रसंगों को उद्धृत करते रहे हैं। उनके विविध जीवनचरित्रों में उपनिषदों के अनेक प्रेरक प्रसंग मिलते हैं।[३४]

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ऋषि दयानन्द यद्यपि दश उपनिषदों का ही अपनी पठन-पाठनविधि में उल्लेख करते हैं, तथापि यथावसर वे दशेतर उपनिषदों को भी प्रमाण रूप में उद्धृत करते हैं। वस्तुतः ऋषि दयानन्द का उपनिषद् व्याख्या को योगदान पृथक् शोध की अपेक्षा करता है।

इस शोध लेख में ग्यारह प्रमुख उपनिषदों का सैद्धान्तिक परिचय एवं उपनिषदों के सन्दर्भ में ऋषि दयानन्द की दृष्टि को प्रस्तुत किया गया है। वस्तुतः उपनिषदें ज्ञान का अथाह सागर हैं। उनके प्रतिपाद्य को संक्षिप्त आलेख में समेटना अत्यन्त जटिल है। उपनिषद् पठन से ज्यादा मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार का विषय है। वर्त्तमान युग की समस्याओं का निदान उपनिषदों में छिपा हुआ है। सम्पूर्ण विश्व, विशेषकर भारत राष्ट्र के जीवन में नवसंचार के लिए उपनिषदों का अध्ययन अपरिहार्य है।

डॉ० रामचन्द्र
संस्कृत विभाग, यूनिवर्सिटी कॉलेज
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
E-mail : ram80du@yahoo.co.in

[३३] **मैत्र्युपनिषद्** १/१

[३४] (a) डॉ. भवानीलाल भारतीय, **नवजागरण के पुरोधा: स्वामी दयानन्द**, श्री घूडमल प्रहलाद कुमार धर्मार्थ न्यास, हिण्डौनसिटी, २००९
(b) देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, **महर्षि दयानन्द का जीवन चरित**, श्री घूडमल प्रहलादकुमार, धर्मार्थन्यास, हिण्डौनसिटी, २००८